गेहूँ एवं जौ संदेश

वर्ष 8, अंक 2 | छमाही पत्रिका | जुलाई–दिसम्बर, 2019

आलेख

- आधुनिक कृषि तकनीकों से उच्च उत्पादकता एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
- गेहूँ में लोहा और जस्ता की जैव उपलब्धता
- फसल अवशेष प्रबंधन की वैज्ञानिक विधियाँ
- गेहूँ के प्रमुख सुंडी कीट एवं उनका प्रबंधन
- जौ का सेवन एक औषधीय वरदान
- गेहूँ में पीला रतुआ प्रतिरोधिता मूल्यांकन और सन्तति वृद्धि के लिए ग्रीष्मकालीन नर्सरी दालंग मैदान (लाहौल–स्पीति) का बहुआयामी उपयोग
- गुजिया वीविलः रबी फसलों का उभरता हुआ कीट
- जौ का भंडारण कैसे करें
- गेहूँ एवं जौ की अनुमोदित नवीनतम प्रजातियाँ
- गेहूँ में चूर्णिल आसिता रोगः लक्षण, कारण तथा प्रबंधन
- भारत में कृषि–स्टार्टअप की मौजूदा स्थिति

सम्पादक मंडल

- सत्यवीर सिंह
- अनुज कुमार
- सेन्धिल आर
- अनिल कुमार खिप्पल
- मंगल सिंह
- रमेश चन्द
- ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

प्रकाशक

डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
e-mail: director.iiwbr@icar.gov.in
दूरभाष न.: 0184–2267490
फैक्स न.: 0184–2267390
वेबसाइटः www.iiwbr.org

छायाचित्र

राजेन्द्र कुमार शर्मा

निदेशक की कलम से...

मैं सर्वप्रथम गेहूँ के रिकॉर्ड उत्पादन के लिए इसके शोध, विकास एवं विस्तार कार्य में शामिल सभी हितधारकों को हार्दिक बधाई देता हूँ जिनके प्रयासों से हम 100 मिलियन टन के चमत्कारी आकड़ों को पार कर सके। साथ ही पिछले वर्ष (2018–19) में हमने जौ की उत्पादकता के उच्चतम शिखर को भी छुआ है जो निश्चित रूप से शोध और विस्तार नीतियों के आपसी तालमेल से सम्भव हो पाया है।

गेहूँ के रिकॉर्ड उत्पादन को देखते हुए, चालू रबी फसल–सत्र (2019–20) में भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल ने दूरगामी योजना बनाई है और गेहूँ व जौ के अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों को अंजाम दिया। इंदौर में आयोजित 58वीं अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान कर्ताओं की बैठक में कुल 17 नई किस्मों की पहचान हुई जिसमें गेहूँ की 15 तथा जौ की 2 किस्में शामिल हैं। उनमें से, एचडी 3086 और डीबीडब्ल्यू 187 का क्रमशः उत्तर–पूर्वी और उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए क्षेत्र विस्तार किया गया जो इन किस्मों की उपयोगिता और उच्च उत्पादकता को दर्शाता है। 10 टन प्रति हैक्टर के उपज लक्ष्य के साथ उच्च उपज क्षमता परीक्षणों (एचवाईपीटी) को कई स्थानों पर आयोजित किया गया है जिसमें उर्वरक और अन्य अनुशंसाओं में संशोधन भी किया गया है। बीज, कृषि में प्रयुक्त महत्वपूर्ण आदानों में से एक है, जिसके परिणामस्वरूप उच्च उत्पादन होता है। इसी को ध्यान में रखकर 172 बीज उत्पादक कम्पनियों के साथ समझौता ज्ञापन (एमओए) पर हस्ताक्षर करके बीज मूल्य श्रृंखला को मजबूत करने के लिए एक ठोस शुरूआत हुई है। जौ के मामले में, व्यापक विस्तार गतिविधियों को अंजाम दिया जा रहा है। इसी क्रम में एबी इनबेव के साथ एक परामर्शी परियोजना की शुरूआत हरियाणा, राजस्थान, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश राज्यों में माल्ट जौ की किस्मों को लोकप्रिय बनाने के लिए हुई है।

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा लगातार सराहनीय अनुसंधान, विकास और विस्तार कार्यक्रमों के माध्यम से विजन 2050 को रेखांकित किया जा रहा है। इस वर्ष भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अपने स्थापना दिवस (16 जुलाई, 2019) के अवसर पर हमारे संस्थान को चौधरी देवी लाल सर्वश्रेष्ठ एआईसीआरपी अवार्ड/पुरस्कार से सम्मानित किया। मैं गेहूँ और जौ उत्पादन में अविस्मरणीय योगदान के लिए संस्थान के सभी कर्मचारियों एवं अधिकारियों, सभी सहयोगियों, नीति नियंताओं और किसानों का आभार प्रकट करता हूँ। मैं विभिन्न पुरस्कार/सम्मान विजेताओं को भी बधाई देता हूँ जिन्होंने अपने प्रयासों से संस्थान का गौरव बढ़ाया है साथ ही यह आश्वासन भी देता हूँ कि हमारा संस्थान सभी हितधारकों की जरूरतों का ध्यान रखेगा ओर उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा।

सभी वर्गों के लोगों की खाद्य और पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए उच्च गुणवत्ता के गेहूँ और जौ का उत्पादन करना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है। उत्पादन संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए उत्पादन को निरंतर वृद्धि के पथ पर अग्रसर रखना ही हमारा लक्ष्य है। मुझे उम्मीद है कि गेहूँ एवं जौ संदेश के इस अंक में प्रकाशित लेखों को पढ़कर हमारे किसान भाई और बहनें लाभान्वित होंगे।

जय किसान, जय विज्ञान !

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

(ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह)

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल–132001, हरियाणा
आईएसओ 9001–2015 प्रमाणित संस्थान
किसान सहायता नम्बर (टोल फ्री) : 1800 180 1891

आधुनिक कृषि तकनीकों से उच्च उत्पादकता एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

[1]नीरज कुमार, [1]राजेन्द्र सिंह छोकर, [1]सुभाष चन्द्र गिल, [1]सुभाष चन्द्र त्रिपाठी,
[1]राजपाल मीना, [1]राम कुमार सिंह एवं [2]मनोज कुमार

[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल सरंक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, चण्डीगढ़

प्राकृतिक संसाधनों के लगातार होते हुए ह्रास में बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति करना विश्व के लिए एक बड़ी चुनौती है। गहन जुताई, उर्वरकों एवं रसायनों के अनुचित प्रयोग और बार–बार एक ही फसल पद्धति के अपनाने से प्राकृतिक संसाधनों पर बुरा प्रभाव पड़ा है। जहाँ एक ओर मिट्टी और वायु की गुणवत्ता घट रही है वहीं दूसरी ओर पानी का स्तर लगातार गिर रहा है। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उस परम्परागत सोच और कृषि पद्धति में बदलाव की जरूरत है जहाँ पर उच्च पैदावार के लिए ज्यादा जुताई और अधिक उर्वरक एवं रसायन के प्रयोग को ही जिम्मेदार समझा जाता है। गहन जुताई से न केवल मिट्टी की सरंचना में बदलाव और उपसतह में संघनन हुआ है बल्कि इससे इंधन का व्यय और ग्रीन हाउस गैसें भी बढ़ी हैं। भूजल के धीमे रिचार्ज होने, मानसून की अनियमितता और ज्यादा पानी चाहने वाली फसलें बार–बार उगाये जाने से जल संकट पैदा हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि, बढ़ते हुए कारखाने और सिंचाई की बढ़ती हुई मांग के कारण भूजल स्तर हर साल 1 से 2 मीटर नीचे गिर रहा है। इन परिस्थितियों में भविष्य में सिंचाई के लिए पानी जुटाना बहुत दुर्लभ हो जायेगा। इसलिए सीमित जुताई और सूक्ष्म सिंचाई को अपनाने और फसल प्रणाली में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। साथ ही फसल अवशेष को जलने की जगह इसका उपयोग मिट्टी की सतह पर आवरण के रूप में प्रयोग करने की आवश्यकता है जिससे न केवल पर्यावरण प्रदूषण में कमी आएगी बल्कि फसल अवशेष में विद्यमान पोषक तत्वों से मिट्टी की गुणवत्ता एवं कार्बन की मात्रा भी बढ़ेगी। फसल की उच्च उत्पादकता के लिए इन समस्याओं को कम करने हेतु खेती में नीचे दी गई तकनीकों को अपनाना आवश्यक है;

1. उपयुक्त किस्मों का उपयोग

अच्छी पैदावार के लिए उच्च गुणवत्ता वाले नवीनतम बीजों का उपयोग करना पहला कदम है। किसान उन्हीं किस्मों का इस्तेमाल करें जो उस क्षेत्र के लिए अनुमोदित की गई हैं तथा बीज हमेशा सरकारी एजेंसी अथवा प्रमाणित भरोसेमंद कम्पनी से ही खरीदें। हर साल रसायन उपचारित नए बीज का इस्तेमाल करें और 3–4 साल के अंतराल पर पूर्व में उपयोग हो रही किस्मों को उस क्षेत्र के लिए अनुमोदित की गई नई किस्मों से बदलें। बीज को मानक दर अथवा विक्रेता द्वारा सुझाई हुई दर पर इस्तेमाल करें। इसके साथ ही ऐसी किस्मों का प्रयोग करें जिनमें जल उत्पादकता अधिक है इससे कम पानी में ज्यादा पैदावार ली जा सकती है।

2. लेजर लैंड लेवलर और सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से जल संरक्षण

भू–जल का लगातार घटता स्तर एक चिंता का विषय है जो आने वाले समय में न केवल कारखानों के लिए बल्कि कृषि क्षेत्र के लिए भी संकट पैदा करेगा। अतः जल की उपयोग दक्षता बढ़ाने एवं प्रति बून्द ज्यादा फसल उगाने की आवश्यकता है। जो किसान परम्परागत तरीके से खेती कर रहे हैं और सतही सिंचाई का प्रयोग करते हैं ऐसे किसानों के लिऐ जुताई के बाद बुआई से पहले खेत को समतल करने के लिए लेजर लैंड लेवलर का प्रयोग करना लाभदायक है। लेजर लैंड लेवलिंग के फायदे निम्नलिखित हैं :

- 20–30 फीसदी पानी की बचत
- पानी का समान वितरण
- फसलों के लिए समान नमी का वातावरण
- फसल का अच्छा अंकुरण और वृद्धि
- सिंचाई में प्रयुक्त ईंधन या बिजली की बचत
- सिंचाई समय और श्रम लागत में कमी
- कम मेंड़ों की जरुरत के कारण फसल क्षेत्र व पैदावार में वृद्धि

सिंचाई प्रणाली में परिवर्तन जल संरक्षण का दूसरा तरीका है। सतही सिंचाई की जगह सूक्ष्म सिंचाई करके प्रभावी तरीके से जल की बचत की जा सकती है। सूक्ष्म सिंचाई दो प्रकार की होती है – फव्वारा सिंचाई प्रणाली और टपका सिंचाई प्रणाली। फव्वारा सिंचाई प्रणाली में पंप की मदद से उच्च दबाव में पानी से सिंचाई की जाती है। इस प्रणाली में पाइप में लगे एक छोटे व्यास के नोजल के माध्यम से वर्षा के समान पानी की बौछार की जाती है। फव्वारा सिंचाई प्रणाली में सतही सिंचाई की भांति पानी के प्रवहण हेतु नालियों की आवश्यकता नहीं होती है जिससे नालियों में होने वाले पानी के नुकसान से बचा जा सकता है। पंप से पाइपों द्वारा पानी को पौधों तक पहुँचाया जाता है। मेन लाईन के लिए आमतौर पर 63 मिमी या उससे ज्यादा व्यास के पाइप प्रयोग होते हैं जिनमें 4–10 कि.ग्रा. प्रति वर्ग से.मी. का दबाव बनाया जा सके। सब–मेन लाईन में 32 से 75 मि.मी. व्यास के पाइप इस्तेमाल होते हैं जिनमें 2.5–4 कि.ग्रा. प्रति से.मी. का दबाव बनाया जा सके। लेटरल के लिए 10 से 20 मि.मी. व्यास और 2.5 प्रेशर रेटिंग के पाइप इस्तेमाल होते हैं। इस सिंचाई विधि में मेड़ों की जरुरत नहीं होती है जिससे फसल के लिए अतिरिक्त क्षेत्र उपलब्ध होता है। इस विधि से पानी के साथ घुलनशील उर्वरक एवं रसायन का छिड़काव भी किया जा सकता है। इस विधि की खास बात यह है कि इससे ऊँची नीची जमीन में भी सिंचाई की जा सकती है। सतही सिंचाई की तुलना में छिड़काव सिंचाई प्रणाली से 30–50 फीसदी पानी की बचत होती है। हालांकि तेज हवा की वजह से छिड़काव सिंचाई में पानी की बूंदे पदच्युत हो जाती है जो इस प्रणाली की

एक मुख्य कमी मानी जाती है। इसलिए इस सिंचाई प्रणाली को ऐसे क्षेत्रों के लिए नहीं सुझाया जाता है जहाँ अकसर तेज हवाएं चलती हैं। टपका सिंचाई प्रणाली को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। सतही टपका सिंचाई प्रणाली और उपसतही टपका सिंचाई प्रणाली। सतही टपका सिंचाई प्रणाली में प्लास्टिक पाइप में लगे ड्रिपर की मदद से पौधे के पास की मिट्टी की सतह पर बून्द–बून्द करके 2–20 लीटर प्रति घंटे की दर से पानी लगाया जाता है। सतही या छिड़काव सिंचाई की भांति इस सिंचाई प्रणाली में पूरी सतह को गीला करने की आवश्यकता नहीं होती है जिससे वाष्पीकरण, हवा और सतह पर पानी के बहने से होने वाले नुकसान से बचा जाता है। यह सिंचाई प्रणाली ऐसी जगह बहुत उपयोगी है जहाँ पर फसल अवशेष को मिट्टी की सतह पर आवरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह विधि ऊंची नीची जमीन में सिंचाई के लिए उत्तम है तथा इसमें पानी के साथ घुलनशील उर्वरक एवं रसायन भी उपयोग कर सकते हैं। इस विधि से 40–65 फीसदी तक पानी की बचत होती है और उर्वरक की उपयोग दक्षता 30 फीसदी तक बढ़ जाती है। इस विधि से सिंचाई करने से फसल लगातार बढ़ती है, स्वस्थ रहती है और फसल की उपज बढ़ती है। टपका सिंचाई प्रणाली का दूसरा प्रकार है उपसतही सिंचाई प्रणाली जिसमें मिट्टी में दबे प्लास्टिक पाइपों में नियमित अंतराल पर लगे एमिटर्स से सिंचाई की जाती है। इस सिंचाई प्रणाली में ड्रिप पाइपें आमतौर पर 97–213 सेमी की दूरी पर सतह से 15 से 25 सेमी नीचे स्थित होती है। इस सिंचाई प्रणाली में पानी को मिट्टी में जड़ों के पास लगाया जाता है जिससे वाष्पीकरण और सतह पर पानी के बहने से होने वाले नुकसान बहुत कम हो जाते हैं। इस सिंचाई प्रणाली में पानी की उपयोग दक्षता अधिक होती है और सतही सिंचाई की अपेक्षा 70 फीसदी तक पानी की बचत होती है।

3. संरक्षण कृषि से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

संरक्षण कृषि खेती करने का दूसरा तरीका है जिससे मिट्टी और हवा की गुणवत्ता में सुधार होता है। सरंक्षण कृषि न्यूनतम जुताई, 30 फीसदी या उससे अधिक फसल अवशेष को मिट्टी की सतह पर बनाए रखना और फसल विविधीकरण के सिद्धांत पर काम करती है। इस कृषि पद्धति में पुरानी फसल को काटने के बाद बिना जुताई किए नई फसल को शून्य जुताई तरीके से बोया जाता है। पुरानी फसल का अवशेष भी आंशिक (न्यूनतम 30 फीसदी) या पूरी मात्रा में खेत में ही रखा जाता है। बिना जुताई किए नयी फसल बोने से समय व ट्रैक्टर में उपयोग होने वाले ईंधन की बचत होती है और ईंधन के जलने से ग्रीन हाउस गैसों से होने वाले वायु प्रदूषण में भी कमी आती है। इससे समय की बचत और फसल की जल्दी बुआई हो जाती है जो फसल के अच्छे उत्पादन में लाभदायक है। बुआई के समय परम्परागत कृषि की भांति ट्रैक्टर और मशीनरी का बार–बार खेत में उपयोग न होने से इस विधि से उपसतह में संघनन भी कम होता है। फसल अवशेष को सतह पर बनाए रखने से लम्बी अवधि में मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है तथा खरपतवारों का प्रकोप कम होता है। फसल अवशेष लम्बे समय तक मिट्टी की नमी बनाये रखता है जिससे कभी–कभी एक सिंचाई बचने की सम्भावना भी रहती है। साथ ही फसल अवशेष बारिश की बूंदों के गिरने और पानी बहने से होने वाले मिट्टी के अपक्षरण को कम करता है और इसमें निहित पोषक तत्त्व मिट्टी को प्रदान करता है जिससे मिट्टी का उपजाऊपन लम्बे समय तक बना रहता है। फसल विविधीकरण जैव विविधता को बनाए रखने में सहायक है और साथ ही मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे कीट प्रबंधन और मिट्टी की गुणवत्ता में भी सहायता मिलती है।

यह स्पष्ट है कि सरंक्षण कृषि में बिना खेत को तैयार किए फसल की समय से बुआई की जा सकती है जिससे फसल की उत्पादकता बढ़ती है। साथ ही संरक्षण कृषि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसान भाईयों को संरक्षण कृषि और उसमें टपका सिंचाई प्रणाली के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे वे बेहतर खेती के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।

गेहूँ में लोहा और जस्ता की जैव उपलब्धता

अजीत सिंह, ओम प्रकाश गुप्ता, वनीता पाण्डेय, सेवा राम एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ समशीतोष्ण देशों की प्रमुख खाद्य फसल है और विकासशील देशों में पारम्परिक खाद्य पदार्थों को विस्थापित करते हुए तेजी से इसकी खपत हो रही है। हालांकि, गेहूँ के उत्पादों में आमतौर पर लोहा एवं जस्ता की जैव उपलब्धता कम है। विश्व स्तर पर एक अनुमान के मुताबिक, 43 प्रतिशत बच्चों और प्रजनन आयु की 29 प्रतिशत महिलाओं में एनीमिया है जिसका प्रमुख कारण खून में लोहे की मात्रा की कमी होती है। जैव उपलब्धता निहित पोषक तत्व का अंश है जो सामान्य शारीरिक कार्यों या भंडारण के लिए उपलब्ध होता है। जैव उपलब्धता के बारे में जानकारी के लिए आमतौर पर मानव, पशु तथा इनविट्रो प्रयोगशाला में अध्ययन महत्वपूर्ण है। बायो–एक्सेसिबिलिटी खाद्य मैट्रिक्स से निकलने वाला पोषक तत्व की वह मात्रा है जो शारीरिक अवशोषण के लिए सुलभ है। लोहा और जस्ता की जैव उपलब्धता क्रमशः 5 तथा 25 प्रतिशत होती है।

सफेद आटा, जिसकी सबसे ज्यादा खपत होती है में इन खनिजों की सांद्रता काफी कम होती है। इसके विपरीत खनिजयुक्त चोकर भाग में फाइटेट्स की उपस्थिति इन खनिजों की जैव उपलब्धता कम करती है। गेहूँ में लोहा तथा जस्ता की जैव उपलब्धता बढ़ाने के लिए हमें फाइटेट्स की मात्रा को कम करना होगा। इसके साथ–साथ हमें लोहा और जस्ता की मात्रा भी गेहूँ की उन्नत प्रजातियों में बढ़ानी होगी। हाल ही में भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा एक उच्च जस्ता वाली (42 पीपीएम) गेहूँ की किस्म, डब्ल्यूबी 2 इजाद की गई है। इसी तरह से हमें और भी उच्च खनिज वाली

उन्नत किस्मों का विकास करना होगा। गेहूँ और अन्य अनाजों के अध्ययन से पता चला है कि ट्रांसजेनिकरण नीतियों का उपयोग खनिजों के लिए स्टार्ची एण्डोस्पर्म ऊतक को 'सिंक' में परिवर्तित करके, सफेद आटे में लोहे और जस्ता की सामग्री को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। जब पारम्परिक बायोफोर्टिफिकेशन और अभिनव प्रसंस्करण संयुक्त होता है, तो इस दृष्टिकोण से गेहूँ के उत्पादों की श्रृंखला में सफेद आटे से लेकर साबुत अनाज तक बढ़े हुए खनिजों की जैव उपलब्धता सुनिश्चित होनी चाहिए।

लोहा और जस्ता को पौधों में छोटे कार्बनिक अणुओं द्वारा घुलनशील रूपों में ले जाया जाता है, जो विशेष संवहनी ऊतकों (जाइलम और फ्लोएम) के माध्यम से विकासशील दानों तक पहुंचते हैं, तथा दानों के खांचे के साथ विस्तारित होते हैं। कार्बनिक अम्ल साइट्रेट और मैलेट जाइलम में लोहे के परिवहन की सुविधा प्रदान करते हैं, जबकि निकोटियन माइनफ्लोएम अंतःकोशिकीय रूप से लोहा और जस्ता के परिवहन की सुविधा देता है। आयरन–निकोटियन माइनकॉम्प्लेक्स सफेद गेहूँ के आटे के अर्क में मौजूद होता है और निकोटियन माइनमा उस अध्ययन और काको–2 कोशिकाओं में प्रदर्शन के अनुसार लोहा और जस्ता की जैव उपलब्धता को बढ़ाता है। आहार के कुछ कारक जैसे जिंक अवशोषण में सुधार, अमीनो एसिड लिगैंड जैसे हिस्टिडीन और सिस्टीन प्रोटीन पाचन के उत्पाद जैसे ट्राइपेप्टाइड और अंतर्जात लिगैंड जैसे साइट्रिक एसिड, शरीर में जिंक के अवशोषण में सुधार करता है। जस्ता अवशोषण के अवरोधक लोहे के समान होते हैं। इनमें फाइटेट, ऑक्जालेट, पॉलीफिनोल, फाइबर इत्यादि प्रमुख रूप से शामिल हैं। उल्लेखनीय रूप से, भोजन प्रसंस्करण के तरीकों के अवशोषण पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए, माइलार्ड प्रतिक्रियाएं जस्ता अवशोषण को रोक सकती हैं। दूसरी ओर, प्रसंस्करण तकनीक जैसे कि भिगोना और किण्वन प्रक्रिया इन खनिजों की जैव उपलब्धता को बढ़ाती है।

फसल अवशेष प्रबंधन की वैज्ञानिक विधियाँ

अनुज कुमार, मंगल सिंह, आर एस छोकर, राजपाल मीना, सत्यवीर सिंह,
सेन्धिल आर, रमेश चन्द एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत वर्ष में कुछ दशक पहले तक पारम्परिक विधि से खेती की जाती थी, जिसमें पशुओं का भी अहम योगदान था। धान एवं गेहूँ के अवशेषों को पशुओं के लिए चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। वर्तमान समय में वैज्ञानिक खेती करने के लिए आधुनिक कृषि मशीनों का चलन बढ़ गया है। कृषि क्रियाओं को सुचारु रुप से पूरा करने के लिए नए–नए ट्रैक्टर, सीड ड्रिल मशीनें, रोटावेटर, कम्बाइन हार्वेस्टर, सुपर स्ट्रा मैनेजमेंट सिस्टम, रीपर आदि मशीनें बाजार में आ जाने के कारण खेती करना और अधिक आसान हो गया है। भारत में सभी खाद्यान्न फसलों का उत्पादन होता है। कुछ फसलों जैसे धान, गेहूँ, मक्का एवं गन्ना आदि के कटाई एवं गहाई के बाद बचे हुए पुआल, भूसा, तना तथा जमीन पर पड़ी हुई पत्तियाँ आदि खेतों में रह जाते हैं, जिन्हें फसल अवशेष कहा जाता है। फसल अवशेषों को अधिकतर किसान खेतों में जला देते हैं, जिसके कारण मृदा में पोषक तत्वों की हानि एवं वातावरण प्रदूषित होता है। भारत में किए गए अनुसंधानों के अनुसार फसल अवशेषों को यदि मृदा में मिला दिया जाए तो मुख्य पोषक तत्वों जैसे–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि होती है तथा मृदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है।

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली के कृषि क्षेत्र में फसल अवशेषों को जलाने से हमारे पर्यावरण एवं कृषि योग्य भूमि को होने वाले नुकसान से बचाने के लिए केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए केन्द्रीय निधि के साथ कृषि यन्त्रीकरण प्रोत्साहन के लिए एक नई योजना की शुरुआत की गई है। इस योजना के अंतर्गत फसल अवशेष प्रबन्धन मशीनरी के लिए प्रक्षेत्र मशीनरी बैंक या कस्टम हाइरिंग केन्द्रों की स्थापना के लिए किसानों की सहकारी समितियाँ, कृषक उत्पादक संगठनों (एफपीओ), स्वयंसेवी समूहों, पंजीकृत किसान सहकारी समितियों/किसान समूहों, निजी उद्यमियों एवं महिला किसान समूहों को परियोजना लागत में 80 प्रतिशत तक सब्सिडी दी जाती है।

फसल अवशेष प्रबंधन के उपाय

फसल अवशेष प्रबंधन की निम्नलिखित तीन वैज्ञानिक विधियाँ हैं, जिनको आसानी से अपनाया जा सकता है।

1. फसल अवशेषों को मृदा में मिलाकर
2. फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर रखकर
3. फसल अवशेषों को पशुचारा, औद्योगिक एवं अन्य उपयोगों के लिए एकत्रित करना

1. फसल अवशेषों को मृदा में मिलाकर

यदि किसान फसल अवशेषों को मृदा में मिश्रित करने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।

- मृदा में मिलाने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जिसके फलस्वरुप भूमि की उपरी सतह की कठोरता कम होती है व मृदा की वायु संचारण, जल–अवशोषण एवं जल–धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- मृदा में मिलाने से पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार के कारण भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।

- फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आगे आने वाली फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

अतः मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को मृदा में मिला देना ही सर्वोत्तम विकल्प है।

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने की तकनीकें

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने के लिए कई प्रकार की मशीनें हमारे देश में विकसित की गई है। फसल अवशेष प्रबंधन में प्रयोग की जाने वाली इन मशीनों की खरीद पर सरकार द्वारा 50 से 80 प्रतिशत सब्सिडी मुहैया कराई जाती है। इन मशीनों से फसल अवशेषों को मिट्टी के साथ मिश्रित करने में किसानों को मदद मिलती है, जिससे भूमि को और अधिक उपजाऊ बनाना सम्भव हो पाता है। फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए सरकार द्वारा कई मशीनों को चिन्हित किया गया है, जिनमें सुपर स्ट्रा प्रबन्धन प्रणाली युक्त कम्बाईन हार्वेस्टर, श्रेडर, मल्चर, श्रब मास्टर, रोटरी स्लैशर, जीरो–टिल–सीड–कम फर्टिलाईजर ड्रिल, कटर कम स्प्रेडर एवं टर्बो हैप्पी सीडर आदि शमिल हैं।

2. फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर रखकर

धान–गेहूँ फसल प्रणाली का 90 प्रतिशत क्षेत्रफल सिंचित है, जबकि उपज स्थिरता, भूमि क्षरण, भूजल स्तर का गिरना एवं वायु प्रदूषण जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भूमि के गुणों में सुधार एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिए मल्चिंग उपयोगी है। इस तरह की समस्याओं को **पलवार (मल्चिंग)** के प्रयोग से काफी हद तक कम किया जा सकता है। इस आसान विधि में जमीन को सूखी धान की पराली, घास व अन्य फसल अवशेषों की हल्की परत से ढक दिया जाता है जिससे वाष्पीकरण कम होने के कारण गेहूँ की फसल को पानी की कम आवश्यकता पड़ती है। यह परत भूमि तक पहुंचने वाले प्रकाश को अवरूद्ध करके खरपतवार वृद्धि को रोक देती है। मिट्टी का कटाव कम करने व लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि करता है। भूमि में जैविक पदार्थों में वृद्धि एवं संरचना में सुधार होता है।

3. फसल अवशेषों को पशुचारा, औद्योगिक एवं अन्य उपयोगों के लिए एकत्रित करना

फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाने एवं सतह पर रखने के अलावा बेलिंग पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित विकल्प प्रदान कर सकता है। कागज मिलों में कार्डबोर्ड (गत्ता) निर्माण के लिए व्यापक स्तर पर उपयोग में लाया जाता है। सूखे क्षेत्रों में पशुओं के भोजन, मशरूम फार्मिंग के लिए हट/झोंपड़ी विभिन्न प्रकार की क्रॉकरी एवं काँच जैसी नाजुक सामग्रियों की पैकेजिंग, बॉयलर में जलाने आदि के लिए धान की पराली व अन्य फसल अवशेषों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए फसल अवशेषों को परिवहनीय आकार में स्ट्रा बेलर से छोटे–छोटे बंडलों (120–135 किलोग्राम) के रुप में समेटने की आवश्यकता होती है। स्ट्रा बेलर धान, गेहूँ, मक्का एवं अन्य फसलों के अवशेषों को काटकर कम्प्रेस्ड करके उसे परिवहनीय आकार में समेट कर उपयोग के लिए आसान कर देता है। किसान अपनी सुविधानुसार

स्ट्रा बेलर से फसल अवशेषों को आयताकार एवं बेलनाकार आकार में ढाल सकते हैं। आस–पास के राइस मिल, गत्ता फैक्ट्री, पेपर मिल, काँच व सैनीटरी के सामान को पैक करने वाले उद्योग व अन्य जरुरत के सामान बनाने वाले कारखानों को इन गांठों/बंडलों को बेचकर किसान अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि उपकरण एवं कृषि मशीनरी बैंक की स्थापना

देश में कृषि को आधुनिक बनाने एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए सभी किसानों को आधुनिक कृषि यन्त्रों की उपलब्धता अति आवश्यक है। किसानों को खेती में मदद करने के लिए सरकार द्वारा हर सम्भव प्रयास किए जा रहे हैं ताकि किसान अच्छा पैसा कमाकर बेहतर जीवनयापन कर सकें। खेती अच्छे से हो सके इसके लिए किसानों को आधुनिक कृषि यन्त्रों की आवश्यकता होती है, किन्तु मशीनों की कीमत अधिक होने के कारण किसान इन्हें नहीं खरीद पाते हैं। इसी समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने एक योजना की शुरुआत की है, जिसका नाम **'कस्टम हायरिंग सेंटर (सीएचसी) फार्म मशीनरी योजना'** है। इसके तहत छोटे किसानों को खेती के लिए मशीन किराए पर दी जाती है और इसके लिए उन्हें केवल 20 प्रतिशत राशि का भुगतान करना होता है, बाकी भुगतान सरकार द्वारा किया जाता है। यह योजना छोटे किसानों को कृषि के बेहतर व्यवसाय बनाने का अवसर प्रदान करने में मदद करेगी। इस योजना की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- हमारे देश में किसानों की स्थिति के उत्थान के लिए भारत सरकार इस योजना को शुरू कर किसानों को सशक्त बनाना चाहती है, ताकि वे भी अन्य लोगों की तरह बेहतर जीवन व्यतीत कर सकें।
- भारत सरकार की इस योजना के शुरू होने से किसान आज के समय में खेती में उपयोग होने वाले आधुनिक कृषि यन्त्रों को किराए पर ले सकते हैं।
- इस योजना के तहत एक यह भी सुविधा दी जा रही है कि यदि किसी किसान के पास आधुनिक कृषि यन्त्र हैं तो वह उन्हें अन्य

किसानों को किराए पर देकर पैसा कमा सकते हैं।

- इस योजना से किसानों को लाभ मिलने के साथ–साथ देश की अर्थव्यवस्था में भी सुधार होगा।
- इस योजना के तहत किसानों को किराए पर मशीनें प्राप्त होने से उत्पादन में वृद्धि होगी। अधिक उत्पादन होने के कारण किसानों को अधिक लाभ होगा।

निष्कर्ष

फसल अवशेषों का प्रबंधन बहुत आसान है, बस आवश्यकता है इस पर अमल करने की और इस दिशा में आगे बढ़ने की। सरकार की अनेकों योजनाएं है जिसका लाभ किसान भाई ले सकते हैं। संगठित होकर एफपीओ बनाकर कस्टम हायरिंग सेंटर की स्थापना से कृषि यंत्रों एवं उपकरणों को गाँव–गाँव तक पहुँचाने के सरकार के लक्ष्य में किसानों को भागीदार बनने की आवश्यकता है।

गेहूँ के प्रमुख सुंडी कीट एवं उनका प्रबंधन

पूनम जसरोटिया, [2]जयंत यादव, [1]प्रेमलाल कश्यप एवं [1]सुधीर कुमार
[1]भाकृअनुप–[1]भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बदलती जलवायु के साथ, कीट–पतंगों की समस्याएं दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। गेहूँ की फसल जिसे किसी समय कीट मुक्त फसल माना जाता था लेकिन अब कई नए कीट–पतंगों द्वारा यह ग्रसित होने लगी है। जो कीट गेहूँ की फसल को कभी–कभी हानि पहुंचाते थे अब नियमित रूप से फसल को क्षति पहुंचा रहे हैं। विभिन्न प्रकार के कीड़े जो गेहूँ उत्पादन को प्रभावित करते हैं, इनमें से सुंडी कीट अब प्रमुख बन गए हैं। विभिन्न प्रकार के सुंडी कीटों द्वारा होने वाले नुकसान एवं प्रबंधन की जानकारी निम्नलिखित है:

(1) सैनिक कीट (आर्मी वर्म)

सैनिक कीट दो प्रकार के होते हैं:

(1) ओरिएंटल आर्मी वर्म (माइथिम्ना सेपराटा)

(2) फॉल आर्मी वर्म (स्पोडोप्टेरा फ्रुगिपर्डा)

लक्षण: सैनिक कीट के व्यस्क पीले भूरे रंग के होते हैं और केवल

चित्र 1: ओरिएंटल आर्मीवर्म (माइथिम्ना सेपराटा)

1–9 दिन तक ही जीवित रहते हैं। ये सूखे तथा नए पौधों की पत्तियों एवं मिट्टी पर एकल या समूह में अण्डे देते हैं। शुरुआत में इनके अण्डे गोल तथा हरे रंग के होते हैं परन्तु बाद में हल्के पीले और काले पड़ जाते हैं। पूर्ण विकसित सुंडी 40 से 50 मिली मीटर लम्बी और 6 से 7 मिली मीटर चौड़ी होती है। नई सुंडी बहुत सक्रिय होती है और मुख्य

चित्र 2 : फॉल आर्मीवर्म (स्पोडोप्टेरा फ्रुगिपर्डा)

रूप से गेहूँ की बाली या पौधे के हरे भाग को अधिक खाती है। सुंडी आमतौर पर पत्तियों के ऊपरी सिरे व अपरिपक्व दानों को खाती है और हवा के द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे पर स्थानांतरित होकर क्षति पहुंचाती है। प्रारम्भिक अवस्था में सुंडी पौधों की पत्तियों को खाकर पत्तीविहीन कर देती है। सुंडी पत्तियों के किनारों से मध्य शिरा की ओर खाते हुए नुकसान करने के साथ–साथ पौधों के बढ़ने वाले भाग को भी नुकसान पहुंचाती है। जब सुंडी तने के मध्य भाग को खाती है तो पौधे की बालियाँ टूटकर गिर जाती हैं। सुंडी 15 से 21 दिनों में पूर्ण विकसित हो जाती है। पूर्ण विकसित सुंडी जमीन के अन्दर छिद्र बनाकर प्यूपा में बदल जाती है। किशोरावस्था गर्मियों में 9 से 13 दिन और सर्दियों में 36 से 48 दिन की होती है। इसके पश्चात् व्यस्क कीट बाहर निकलता है ।

प्रबंधन: इस कीट के नियन्त्रण के लिए फसल में इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस जी 0.4 ग्राम प्रति लीटर या क्लोरेंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एस.सी. 0.4 मि.ली. प्रति लीटर (ट्रेड नेम: कोरा/रेनएक्सपायर) या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 400 मि.ली. की दर से, 80–100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें। खेत में वयस्क पतंगों की निगरानी के लिए फेरोमोन जाल (4–5 प्रति एकड़) लगाएं। फसल अवशेषों और खरपतवारों कों नष्ट करें ।

जौ का सेवन एक औषधीय वरदान

मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, सेन्थिल आर, दिनेश कुमार,
रमेश पाल सिंह वर्मा, रमेश चन्द एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में जौ की खेती प्राचीन काल से की जा रही है। उत्पादन की कुल मात्रा के हिसाब से अनाज फसलों जैसे धान, गेहूँ एवं मक्का के बाद जौ की फसल को विश्व में चौथा स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल से इसका उपयोग धार्मिक संस्कारों, भोजन एवं चारे के रुप में होता रहा है। संस्कृत में इसे ''यव'' के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में जवा, जवार, आरिसि, चीनो एवं वियाम आदि के नाम से जानते हैं, लेकिन इसमें पाए जाने वाले गुणों के कारण जौ को **'अनाज का राजा'** कहा जाता है। जौ एक पवित्र अनाज है। हवन/यज्ञ में इसका प्रयोग मानव जीवन में इसकी महत्ता का एक प्रमाण है। इसे बहुत कम मेहनत एवं कम उपजाऊ भूमि पर भी उगाया जा सकता है। यह वास्तव में अनाज ही नहीं बल्कि औषधि भी है।

जौ की खेती भारत के पर्वतीय क्षेत्र, उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र एवं मध्य भारत में की जाती है। वर्ष 2019–20 के दौरान भारत में जौ का उत्पादन लगभग 1.83 मिलियन टन हुआ। छिलका रहित एवं छिलका सहित दो तरह का जौ पाया जाता है। भारत में जौ का उपयोग दैनिक आहार में एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल के रूप में किया जाता रहा है क्योंकि यह पौष्टिकता से भरपूर होता है। कुछ वर्षों में इसके उत्पादन में निरंतर गिरावट देखने को मिली है जो एक चिन्ता का विषय है। हाल के वर्षों में इसकी औद्योगिक महत्ता को देखते हुए बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने जौ के उत्पादन पर काफी जोर दिया है ताकि उनकी माल्ट की आवश्यकता की पूर्ति देश में ही हो सके। इतना ही नहीं ये कंपनियाँ अब माल्ट जौ की किस्मों के विकास एवं उनकी उत्पादन प्रौद्योगिकी पर शोध एवं विकास के लिए शोध परियोजनाओं को प्रायोजित करने के लिए तैयार हैं, जिसकी वजह से जौ एक व्यवसायिक फसल का दर्जा प्राप्त कर सकती है।

जौ का उपयोग खाद्य पदार्थों (आटा, सूजी, दलिया, सत्तू, फ्लैक्स, बिस्कुट व पेय पदार्थ), पशु आहार एवं इसके अर्क व सीरप का प्रयोग व्यावसायिक रूप से तैयार किए गए खाद्य एवं मादक पेय पदार्थों में स्वाद, रंग या मिठास जोड़ने के लिए किया जाता है। वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर जौ को दवा के रूप में काफी उपयोगी जाना जाता है। उत्पादित भारत में जौ के माल्ट का उपयोग लगभग 60 प्रतिशत बीयर, 25 प्रतिशत शक्तिवर्धक पेय, 07 प्रतिशत दवाएं और 08–10 प्रतिशत माल्ट व्हिस्की बनाने में किया जाता है। अन्य फसलों की तुलना में कम वसा और उच्च फाइबर होने के कारण इसके स्वास्थ्य सम्बंधी लाभों पर विचार करते हुए इसके उपभोग में वृद्धि करने की आवश्यकता है।

चित्र : जौ से निर्मित खाद्य उत्पाद

जौ में विटामिन बी–कॉम्प्लेक्स, आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज, सेलेनियम, जिंक, कॉपर, प्रोटीन, डायटरी फाइबर्स एवं कई तरह के एंटी–ऑक्सीडेंट पाए जाने के कारण यह एक बहुत ही

तालिका: ताजा 100 ग्राम जौ (शुष्क भार) में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

मूल पोषक तत्व		खनिज लवण		विटामिन्स	
कैलोरी	354 कैलोरी	लोहा	3.6 मिलीग्राम	फॉलेट	19.0 माइक्रोग्राम
वसा	2.3 ग्राम	मैग्नीशियम	133 मिलीग्राम	नियासिन	4.604 मिलीग्राम
कार्बोहाइड्रेटस	73.5 ग्राम	फॉस्फोरस	264 मिलीग्राम	राइबोफ्लेविन	0.285 मिलीग्राम
डायटरी रेशा	17.2 ग्राम	पोटाशियम	452 मिलीग्राम	थाइमिन	0.646 मिलीग्राम
प्रोटीन	12.48 ग्राम	जिंक	2.77 मिलीग्राम	पेटोथेनिक अम्ल	0.282 मिलीग्राम
शर्करा	0.8 ग्राम	कैल्शियम	33.0 मिलीग्राम	विटामिन ए	22 आईयू
जल	9.44 ग्राम	सोडियम	12.0 मिलीग्राम	विटामिन बी 6	0.318 मिलीग्राम
		सेलेनियम	37.7 एमसीजी	विटामिन ई	0.57 मिलीग्राम
		कॉपर	0.498 मिलीग्राम	विटामिन के	2.2 एमसीजी
		कोलेस्ट्रॉल	0.00 मिलीग्राम	फॉलिक एसिड	0.00 माइक्रोग्राम

उपरोक्त आंकड़ों को न्यूट्रीशन वैल्यू. ओआरजी 2020 से संकलित किया गया है।

लाभदायक अनाज के रुप में जाना जाता है। उपरोक्त संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आप चाहे तो इसे अपने रोज के आहार में शामिल कर सकते हैं या फिर एक औषधि के रूप में भी ले सकते हैं। जौ के सेवन से निम्नलिखित लाभ होते हैं।

- कोलेस्ट्रॉल शरीर की कोशिकाओं में पाया जाने वाला एक वसा जैसा पदार्थ है, इसकी कोशिकाओं एवं हार्मोन के निर्माण में अहम भूमिका होती है। हालांकि, कोलेस्ट्रॉल की अधिकता के कारण हृदय रोग, स्ट्रोक एवं उच्च रक्तचाप जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में जौ का सेवन करने से कोलेस्ट्रॉल कम होता है।
- जौ का सेवन मधुमेह रोग में भी लाभकारी है क्योंकि यह रक्त में ग्लूकोज की मात्रा नियन्त्रित करता है।
- जौ में सोडियम की मात्रा कम होने तथा पोटाशियम, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की उचित मात्रा होने की कारण यह रक्त चाप (ब्लड प्रेशर) को नियंत्रण में रखता है।
- कब्ज या अपचन की समस्या में जौ को रोजाना खाने में शामिल करने से काफी लाभ मिलता है। पाचन क्रिया को सही रखने के लिए भी जौ एक अच्छा भोजन है।
- जौ में सेलेनियम खनिज लवण बहुत ही अच्छी मात्रा में पाया जाता है। यह खनिज लवण कैंसर की बीमारी को ठीक करने में बहुत ही लाभदायक है और यह साथ में कैंसर के कोशिकाओं को शरीर में बढ़ने से रोकता है।
- जौ में विटामिन एवं खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो अनावश्यक टॉक्सिस को शरीर से बाहर निकालने में मदद करते हैं।
- ऐसा माना जाता है कि जौ के बने सत्तू का गर्मियों में सेवन करने से शरीर में शीतलता का आभास होता है एवं शरीर की गर्मी सहन करने की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

जौ के सेवन में सावधानियाँ

- सीलिएक रोग से पीड़ित व्यक्तियों को जौ के सेवन से बचना चाहिए। क्योंकि जौ में ग्लूटिन होने के कारण इसका सेवन ऐसे लोगों के लिए समस्या पैदा कर सकता है।
- जिन व्यक्तियों को गेहूँ, जई, राई, मक्का, चावल व अन्य अनाजों से एलर्जी होती हो उन लोगों को जौ के सेवन से बचना चाहिए क्योंकि उन्हें जौ से भी एलर्जी हो सकती है।

निष्कर्ष : जौ एक अद्भूत अन्न है जिसका उपयोग सदियों से होता आ रहा है। इसके स्वास्थ्य संबंधित गुणों को आम जन तक पहुँचाकर इसकी खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है।

गेहूँ में पीला रतुआ प्रतिरोधिता मूल्यांकन और सन्तति वृद्धि के लिए ग्रीष्मकालीन नर्सरी दालंग मैदान (लाहौल–स्पीति) का बहुआयामी उपयोग

हनीफ खान, ज्ञानेन्द्र सिंह, ओपी गंगवार, एससी भारद्वाज,
गोपालारेड्डी के, ओमप्रकाश एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान का दालंग मैदान, लाहौल और स्पीति (हिमाचल प्रदेश) में स्थित क्षेत्रीय केन्द्र, भारत के गेहूँ और जौ शोधकर्ताओं के लिए राष्ट्रीय ग्रीष्मकालीन नर्सरी सुविधा के रूप में कार्य करता है। यह समुद्र तल से 3045 मीटर (9990 फुट) की ऊँचाई पर 32°30 उत्तरी और 76°59 पूर्वी अक्षांश और देशांतर पर मनाली–लेह राष्ट्रीय राजमार्ग–1 पर स्थित है। गेहूँ और जौ की फसलों के पौधों में उन्नत किस्मों के विकास के लिए आवश्यक समय को कम करने के लिए यह ग्रीष्मकालीन नर्सरी सुविधा बहुत उपयोगी पाई गई है। ग्रीष्मकालीन नर्सरी, दालंग मैदान में अनुसंधान सामग्री का रोपण मई के महीने में किया जाता है और कटाई सितम्बर के मध्य से अक्तूबर के मध्य तक होती है। इसके अलावा इस सुविधा का स्थान और जलवायु भी गेहूँ के पीला रतुआ रोग के खिलाफ स्क्रीनिंग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस उद्देश्य के लिए वर्ष 2019 के दौरान, देश भर के 42 सहकर्मी–प्रजनकों/रोग वैज्ञानिकों से प्राप्त लगभग 28000 गेहूँ की लाईनें ग्रीष्मकालीन नर्सरी, क्षेत्रीय केंद्र, दालंग मैदान पर लगाई गई। इनमें से करीब 15000 सामग्री/लाईनों में पीला रतुआ के लिए और 1150 गेहूँ की लाइनों में चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) की जांच की गई। इसके अलावा, रतुआ के उभरते पैथोटाईप को ट्रैप करने के लिए गेहूँ रोग निगरानी नर्सरी (डब्ल्यूडीएमएन) भी लगाई गई। संस्थान की शिमला (हिमाचल प्रदेश) में स्थित रतुआ प्रयोगशाला में पीला रतुआ के नमूनों की जाँच करके पेथोटाईप की पहचान की गई। गेहूँ के पीले रतुआ के

अंतर्राष्ट्रीय विशेषता–सूचक का उपयोग करके पहचाने गए पीएसटी पैथोटाईप में 46 एस 119 (63.3 प्रतिशत), 110 एस 119 (24.5 प्रतिशत) 238 एस 119 (6.1 प्रतिशत), 7 एस 0 (4.1 प्रतिशत) और 46 एस 103 (2.0 प्रतिशत) शामिल हैं। उच्च रतुआ रोग दबाव के साथ हाल ही में उभरे 110 एस 119 और 238 एस 119 अत्यधिक विरुलेन्ट पीएसटी पैथोटाइप्स की उपस्थिति इंगित करती है कि ग्रीष्मकालीन नर्सरी, दालंग मैदान रतुआ रोग के प्रति प्राकृतिक स्क्रीनिंग के लिए एक आदर्श स्थान है, जो गेहूँ की फसल के चयन और पीढ़ी की उन्नति में सहायता करता है। सुधारात्मक क्रॉस, सीमित बीज गुणन करने के लिए भी इस केन्द्र की सुविधाओं का उपयोग किया जा रहा है। ग्रीष्मकालीन नर्सरी 2019 के दौरान 300 से अधिक सुधारात्मक क्रॉस, बैकक्रॉस/थ्री–वे क्रॉस विभिन्न संस्थानों के वैज्ञानिक और कर्मचारियों द्वारा बनाए गए। देश भर में गेहूँ के प्रजनकों के लिए प्राकृतिक मध्यम अवधि जननद्रव्य रख–रखाव स्थान के रूप में कार्य करता है।

गुजिया वीविलः रबी फसलों का उभरता हुआ कीट

[1]पूनम जसरोटिया, [2]जयंत यादव, [1]प्रेमलाल कश्यप एवं [1]सुधीर कुमार
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गुजिया वीविल या भुण्डी (टेनीमिक्स इंडिकस) वर्तमान में गेहूँ उत्पादन वाले क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण कीट है। परिपक्व गेहूँ पर इस कीट के आक्रमण की वजह से खेत में से 'गुजिया' मिठाई जैसी गंध निकलती है जिस वजह से इसे गुजिया वीविल कहते हैं। कुछ समय पहले तक गुजिया वीविल केवल छुट–पुट जगहों पर ही नुकसान पहुँचाती थी परन्तु अब यह कीट पंजाब, हरियाणा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल और असम में रबी फसलों जैसे की गेहूँ, जौ, सरसों, चना, अलसी, बरसीम इत्यादि में नियमित रूप से सक्रिय है। इसका प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन को माना गया है।

पहचानः ये कीट आमतौर पर मिट्टी जैसे धूसर रंग के 6.8 मिलीमीटर लम्बे तथा 2.4 मिलीमीटर चौड़े होते हैं। इनके मुखांग हल्के भूरे रंग के, सिर के नीचे छिपे तथा छोटी थूथन जैसे होते हैं जिसकी वजह से इसे चौड़ी नाक वाली भुण्डी भी कहते हैं। गुजिया वीविल की आँखें बड़ी एवं काले रंग की होती हैं।

इस कीट के अगले पंख आयताकार एवं पिछले पंख लगभग त्रिभुजाकार होते हैं जोकि मोटे एवं कठोर होने की वजह से उड़ने योग्य नहीं होते। इस कीट की इल्ली (लार्वा या ग्रब) हल्के पीले रंग की तथा 3 से 5 मिलीमीटर लम्बी होती है।

जीवन चक्रः यह कीट जून से दिसम्बर तक सक्रिय रहता है तथा साल के बाकी समय मृदा में इल्ली या कृमिकोष (प्यूपा) के रूप में सुसुप्त अवस्था में रहता है। जून में निकलने वाली भुण्डियां प्रजनन के लिए अक्तूबर तक तैयार होती हैं। प्रजनन के दौरान कीट 5–11 बार जमीन में ढेलों और दरारों के बीच में कुल 6–80 अंडे देता है। अंडे से इल्ली निकलने का समय 6–7 सप्ताह है, जोकि पर्यावरण की स्थिति पर निर्भर करता है। इल्ली का जीवन काल 10–18 दिन होता है तथा इसके बाद ये 15–60 सेंटीमीटर की गहराई में मिट्टी के कृमिकोष बनाते हैं। प्यूपीकरण मार्च से अप्रैल तक होता है तथा 7–9 सप्ताह के लिए चलता है। वयस्क भुण्डियां अप्रैल से मई के दौरान बनती हैं तथा बारिश के बाद जून से जुलाई तक मिट्टी से बाहर आती हैं। इस कीट की एक साल में एक ही पीढ़ी पैदा होती है।

लक्षणः वयस्क और इल्ली दोनों पौधों की जड़ों को नुकसान पहुंचाते हैं परन्तु फसल को मुख्य हानि वयस्क भुण्डियों से होती है। ये खाने के लिए नए अंकुरित पौधों को जमीन में जड़ों के पास से काट देती हैं जिससे पूरा पौधा मर जाता है। सबसे ज्यादा नुकसान रबी फसलों में अक्तूबर–नवम्बर के दौरान अंकुरण के समय पर होता है। कई बार खेत में पूरी फसल ही नष्ट हो जाती है और किसानों को दोबारा बुआई करनी पड़ती है। यह कीट बुआई के बाद मिट्टी में पड़े बीजों को भी नुकसान पहुँचाता है। फसल के परिपक्व होने पर वयस्क भुण्डी पत्तों एवं मुलायम शाखाओं को खाना शुरू कर देती है।

प्रबंधन

भौतिक प्रबंधन

1. कृमिकोष (प्यूपा) को नष्ट करने के लिए गर्मियों में अप्रैल–मई के दौरान खेत में गहरी जुताई करनी चाहिए।
2. गेहूँ की समय से बुआई करें और फसल–चक्र अपनाएं।
3. बुआई की तैयारी करने से पहले खेतों में पानी देना चाहिए क्योंकि सूखी मिट्टी में इस कीट का प्रकोप ज्यादा होता है।

रासायनिक प्रबंधन

1. खेत में मैलाथियान 5 प्रतिशत धूल का 30 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें।
2. फोरेट 10 जी के दानों का 10 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में बुरकाव करें।
3. गेहूँ की खड़ी फसल पर क्विनालफॉस 25 ई.सी. का 2.0 लीटर या क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. का 2.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव भी प्रभावकारी पाया गया है।

जौ का भंडारण कैसे करें

अजीत सिंह खरब, पूनम जसरोटिया, दिनेश कुमार एवं रमेश पाल सिंह वर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में प्रतिवर्ष भंडारण के दौरान अनाज को एक चौथाई से एक तिहाई नुकसान होता है, जिससे बीज की गुणवत्ता एवं अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत में भंडारित अनाज में कीटों के द्वारा लगभग 10 प्रतिशत नुकसान पहुँचता है। भंडारित अनाज में कीटों से होने वाली क्षति का मुख्य कारण बीज में नमी की मात्रा है, जिसके कारण भंडारित अनाज में कीट का विकास और गुणन बहुत तेजी से होता है। चावल, गेहूँ और मक्का के बाद जौ सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसलों में से एक है। जौ के भंडारण में लगने वाले कीटों में मुख्यतः घुन, खपरा, सुण्डी, आदि हैं। जौ एक ऐसी फसल है जो नमी को जल्दी सोख लेती है और छिलका पतला होने के कारण यह नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। इन कारणों से जौ के खराब होने की सम्भावनाएं और भी बढ़ जाती है। जौ में नमी होने के कारण कीट एवं चूहे आदि का संक्रमण अधिक होता है।

भंडारण में जौ के खराब होने के कारण

- ज्यादा नमी होने से अनाज मे कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। इसमें कीट एवं फफूंद की वृद्धि हो जाती है। जौ के दाने अंकुरित भी हो सकते हैं। इससे गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। इसलिए भंडारण से पहले दानों को अच्छी तरह सुखाएं ताकि नमी सुरक्षित स्तर (10 प्रतिशत से कम) पर बनी रहे।
- कीट अनाज को धीरे–धीरे अन्दर से खाना शुरू करके खोखला कर देते हैं जिससे यह अनाज बोने या खाने के लायक नहीं रहता।
- चूहे खड़ी फसल एवं भंडारित अनाज को खाते हैं, जिससे दानों को काफी नुकसान पहुँचता है।
- जौ भंडारण में प्रयोग किए गए बोरे साफ होने चाहिए अन्यथा इससे भी कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। पुराने बोरों में कीट या अण्डे हो सकते हैं।

सुरक्षित भंडारण

- बोरों को एक प्रतिशत मैलाथियान के धोल में 10 मिनट भिगोकर अच्छी तरह सुखाएं। तेज धूप में 5–6 घंटे सुखाने से कीटों का प्रकोप कम हो जाता है। भंडारित आनाज वाले बोरे का मुँह अच्छी तरह से बन्द करें।
- भंडारगृह को अच्छी तरह साफ करें। फर्श/दीवारों में यदि दरार हों तो उन्हें सीमेन्ट से अच्छी तरह भर दें। भंडारगृह को भी 8–10 दिन पहले 0.5 प्रतिशत मैलाथियान का घोल बनाकर उपचारित करें। उसके बाद अच्छी तरह सूखने दें। भंडारगृह की खिड़कियाँ ऊपर की ओर हों तथा जाली लगी हो।
- भंडारण से पहले अनाज की अच्छी तरह से सफाई करें। इसमें भूसी, कटे–फटे, टूटे हुए व संक्रमित दाने तथा कंकड़ ना हों।
- चूहों को नियंत्रित करने के लिये 2–3 प्रतिशत जिंक फॉस्फाईड की टिकिया/पाउडर उपयुक्त माना गया है। इनको भंडारगृह में

भंडारण कीटों द्वारा जौ के क्षतिग्रस्त दाने

दीवार के साथ या किनारों पर डाल दें।

- सेल्फॉस (एल्युमिनियम फास्फाईड) की 3 ग्राम की एक गोली प्रति कुंतल अनाज की दर से उपयोग करें।
- बोरे सीधे फर्श पर न रखें। लकड़ी के फट्टों पर बोरों को रखना चाहिए। साथ ही इन्हें दीवार से भी 1.5–2 फीट की दूरी पर रखें।
- बोरे रखने के बाद वायुरोधक लेप लगाना चाहिए।

ग्रामीण भंडारण योजना

हमारे देश का हर किसान आर्थिक रूप से इतना समर्थ नहीं है कि वह अपनी उपज के लिए भंडारण की समुचित व्यवस्था कर सके। इसी बात को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार द्वारा ग्रामीण भंडारण योजना की शुरूआत की गई है।

ग्रामीण गोदाम के निर्माण की परियोजना देश भर में व्यक्तियों, किसानों, कृषक/उत्पादक समूहों, प्रतिष्ठानों, गैर–सरकारी संगठनों, स्वयं सहायता समूहों, कम्पनियों, निगमों, सहकारी संगठनों, परिसंघों और कृषि उपज विपणन समिति द्वारा शुरू की जा सकती है।

किसानों की जरूरतें पूरी करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भंडारण क्षमता का निर्माण

इस योजना के तहत न्यूनतम क्षमता 50 मीट्रिक टन है व अधिकतम क्षमता 10 हजार मीट्रिक टन है। इस योजना के तहत गोदाम बनाने के लिए ऋण दिया जाता है। दिए गए ऋण पर किसान को अनुदान प्रदान किया जाता है। इसके तहत आवेदन हेतु आपको नजदीकी बैंक/सहकारी बैंक/नाबार्ड से सम्पर्क करना होगा।

किसानों की सभी श्रेणियों, कृषि स्नातकों और सहकारी संगठनों से सम्बंधित परियोजना की कुल पूंजी लागत का 25 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है, जिसकी अधिकतम सीमा 2.25 करोड़ रूपए है।

गेहूँ में चूर्णिल आसिता रोगः लक्षण, कारण तथा प्रबंधन

सोनिका
आनुवंशिकी तथा पादप प्रजनन विभाग, कृषि महाविद्यालय, कौल
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूँ का चूर्णिल आसिता रोग, ठंड और नमी वाले क्षेत्रों जैसे एशिया, अफ्रीका, यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में एक गंभीर समस्या है। गेहूँ की बौनी और अर्द्धबौनी किस्मों की लोकप्रियता, अधिक रोपण घनत्व, नत्रजन के अत्यधिक प्रयोग, सिंचाई की स्थिति में सुधार और ग्रीनहाउस प्रभाव के कारण चूर्णिल आसिता रोग एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। गेहूँ में चूर्णिल आसिता एक कवक पत्ती रोग है जो इस रोग के प्रति अतिसंवेदनशील गेहूँ की किस्मों में उपज और अनाज की गुणवत्ता को कम करता है। अनुकूल मौसम में इसके कई तेज जीवन–चक्र होते हैं और इसे नियंत्रित करना बहुत कठिन हो सकता है। अतः इसके शुरुआती संक्रमण से बचने और इसके इलाज के लिए प्रभावी रणनीति अपनाना अति आवश्यक है।

संक्रमण और विकास

उच्च आर्द्रता (85–100 प्रतिशत) और 15–22 डिग्री सेल्सियस तापमान रोग के लिए अनुकूल होते हैं। लेकिन तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर होने पर और आर्द्रता में गिरावट आने पर यह रोग कम हो जाता है। यह रोग उच्च उत्पादन स्थितियों, जैसे उच्च वर्षा या आर्द्र तटीय क्षेत्रों में अधिक समय तक बना रह सकता है, जहाँ उच्च बीज दर या नत्रजन उर्वरक के भारी प्रयोग ने सघन फसलों को बढ़ावा दिया गया हो, जो लम्बी अवधि तक नम रहती हैं। प्रबंधन की रणनीतियों में अधिक प्रतिरोधी किस्में लगाना, स्वैच्छिक गेहूँ को नष्ट करना, नाइट्रोजन प्रबंधन एवं बीज ड्रेसिंग और पर्ण फफूंदनाशकों के कुशल उपयोग से रोग की रोकथाम शामिल है।

लक्षण

चूर्णिल आसिता रोग मुख्य रूप से पत्तियों को संक्रमित करता है, लेकिन गम्भीर स्थिति होने पर पत्ती म्यान, तना और बालियों को भी संक्रमित कर सकता है।

1. रोग के लक्षण पत्तियों, तनों और बालियों पर विकसित होते हैं। शरद ऋतु के बाद से होने वाले लक्षणों के साथ संक्रमण सबसे अधिक पत्तियों पर पाया जाता है, जहाँ सफेद, रूई सदृश्य कवक वृद्धि दिखाई देती है। ये चूर्ण के साथ बीजाणुओं का समूह पैदा करते हैं। मौसम के अंत में, काले बीजाणु (क्लीस्टोथेसिया) कवकीय वृद्धि में विकसित होते हैं।
2. गेहूँ में, पत्ती का पीलापन संक्रमण से जुड़ा होता है। पीली पत्तियों पर, रूई जैसी कवक वृद्धि एक विशिष्ट 'हरे द्वीप' को बनाए रखती है।

चित्र 1. चूर्णिल आसिता रोग गेहूँ के पत्तों पर सफेद रंग की वृद्धि के रूप में दिखाई देता है।

3. लक्षण आमतौर पर नीचे से ऊपरी पत्तियों तक बढ़ते हैं, हालांकि संक्रमण किसी भी स्तर पर, विशेष रूप से उस मौसम में हो सकता है जहाँ गेहूँ में चूर्णिल फफूंदी के बीजाणु मौजूद होते हैं और स्थितियाँ अनुकूल होती हैं।
4. तेजी से बढ़ने वाले ऊतक संक्रमण के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। प्रारम्भिक विकास के चरणों में ऐसे पौधे, नत्रजन के

चित्र 2. चूर्णिल आसिता गेहूँ के पत्तों पर सफेद वृद्धि के रूप में दिखाई देती है। पत्तियों पर परिपक्व कवक वृद्धि काले धब्बों के साथ भूरे रंग में दिखाई देती है।

अनुप्रयोग के बाद आमतौर पर गम्भीर संक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। फसल वृद्धि के साथ गम्भीर बीमारी के दबाव में सफेद पाउडर की वृद्धि भी उपज को प्रभावित कर सकती है (चित्रः 1 और चित्रः 2) संक्रमण के आस–पास का क्षेत्र और पत्ती के पीछे की तरफ का हिस्सा पीले से भूरे रंग में बदल जाता है।

5. पत्तियों और बालियों पर पुराने संक्रमण भूरे रंग में बदल जाते हैं और काले फलने वाली संरचनाएँ विकसित कर सकते हैं, जिन्हें चैसोथेसिया (जिसे पहले क्लिस्टोथेसिया कहा जाता है) कहते हैं, जो काले धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं (चित्रः 2)। गम्भीर संक्रमण के कारण पत्ती की मृत्यु हो सकती है। युवा, रसीले और तेजी से बढ़ने वाले पौधे के ऊतक जैसे कि नए पत्ते और कल्ले, पुराने पौधे के ऊतकों की तुलना में अधिक संवेदनशील होते हैं।

चूर्णिल आसिता रोगः महत्त्व

विशेष रूप से शरद ऋतु के दौरान, चूर्णिल आसिता की उपस्थिति आमतौर पर अपनी क्षति क्षमता को बढ़ा देती है। अतिसंवेदनशील किस्मों में, उपज हानि अधिक (20 प्रतिशत तक) हो सकती है, अतः इसका प्रारम्भिक नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। हालांकि, बीमारी आमतौर पर बहुत छोटे उपज नुकसान (कभी–कभी, 10 प्रतिशत से कम) और ध्वज पत्रक तथा बालियों पर देर से हमले (फूल आने के बाद) कभी–कभी ही अधिक नुकसान का कारण बनती है। तनाव के तहत फसलें, देर से बोई जाने वाली फसलें, और फसलें जो तेजी से बढ़ती हैं, उन पर अक्सर रोग का हमला होने का खतरा होता है। प्रारम्भिक हमलों से कल्लों की संख्या कम हो सकती है और अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग रोग को प्रोत्साहित कर सकते हैं। घनी फसलों में फफूंदी विशेष रूप से गम्भीर हो सकती है।

उच्च जोखिम वाले कारक / स्थिति

गेहूँ का चूर्णिल आसिता रोग केवल गेहूँ के लिए विशिष्ट है। चूर्णिल आसिता रोग आमतौर पर निम्नलिखित कारक तथा स्थिति में बढ़वार करता है।

1. एक अति संवेदनशील किस्म।
2. शुरुआती विकास चरण उदाहरण के लिए टिलरिंग और बढ़ाव जहाँ विकास दर अधिक होती है।
3. हल्के तापमान (15–22 डिग्री सेल्सियस) और उच्च आर्द्रता (70 प्रतिशत से अधिक)।
4. गर्म, आर्द्र लेकिन बारिश से मुक्त मौसम।
5. सघन फसल आच्छादन, जहाँ हवा का संचार खराब है और नम, छायांकित क्षेत्रों में।
6. उच्च बीज दर।
7. उच्च नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग।
8. पोटाशियम की कमी वाली मिट्टी।
9. अच्छी मिट्टी की नमी प्रोफाइल जो आर्द्रता को बढ़ावा देती है।

चूर्णिल आसिता रोग के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु

उपज की हानि

मौसम की शुरुआत में संक्रमण प्रकाश संश्लेषक पत्ती क्षेत्र और फसल को उपलब्ध पोषक तत्वों को कम करके उपज को काफी कम (25 प्रतिशत तक) कर सकता है। प्रारम्भिक वृद्धि के चरणों में चूर्णिल आसिता रोग के गम्भीर संक्रमण से पौधों की मृत्यु हो सकती है। बाद में मौसम में संक्रमण, जैसे कि पौधा बढ़वार और फूलों के चरणों के बीच, प्रकाश संश्लेषक पत्ती क्षेत्र को कम कर सकता है और अनाज का आकार कम, कम पैदावार और गुणवत्ता में गिरावट का कारण बन सकता है।

फसलों की देख–रेख की आवश्यकता

जब संक्रमण पहले से ही फसल के आच्छादन में जोरदार रूप से स्थापित हो जाता है, उस स्थिति में, इस रोग का नियंत्रण अधिक कठिन होता है। इसलिए उत्पादकों को शुरुआती लक्षणों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, खासकर अतिसंवेदनशील किस्मों में शुरुआती लक्षणों का पता लगाने के लिए क्योंकि फसल जल्दी खराब हो जाती है। विशेष रूप से उन फसलों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो जल्दी बोई गई थीं, और जिनमें घने आच्छादन, उच्च नाइट्रोजन की स्थिति और एक अच्छी मिट्टी की नमी प्रोफाइल मौजूद है। मौसम की स्थिति, इस रोग विकास के लिए महत्वपूर्ण है, अगर मौसम गर्म (25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर) है तो यह सम्भावना है कि कवकनाशी का हस्तक्षेप करने से रोग जल्दी से कम हो जाता है।

मौसम के बीच बीमारी की स्थिति

गेहूँ चूर्णिल आसिता स्वयंसेवक गेहूँ के पौधों (ग्रीन ब्रिज) और गेहूँ के ठूंठ पर मौसम के बीच जीवित रह सकता है। यह फसल मौसम में, हरे गेहूँ की उपस्थिति में संक्रमण उत्पन्न करने के लिए रतुआ फफूंदी जैसे अविकल्पी रोगजनकों के लिए एक अवसर प्रदान करता है।

चूर्णिल आसिता, फफूंदी का एक छोटा संक्रमण चक्र है जो लाखों बीजाणु (कोनिडिया) पैदा करता है, जिससे फसल में तेजी से रोग

विकास हो सकता है। अनुकूल परिस्थितियों (इष्टतम तापमान और उच्च सापेक्ष आर्द्रता) में बीजाणु अंकुरण, संक्रमण और बाद के बीजाणु उत्पादन के चक्र को कम से कम पांच दिनों में पूरा किया जा सकता है। महामारी विकास के लिए आदर्श तापमान 15–22 डिग्री सेल्सियस है। कम तापमान (5–10 डिग्री सेल्सियस), संक्रमण के चक्र में काफी देरी करता है, 20 डिग्री सेल्सियस से 2–3 गुना अधिक समय लेता है और 25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान पर संक्रमण और फैलाव रुक जाता है।

एक बार संक्रमण स्थापित हो जाने के बाद, चूर्णिल आसिता फफूंदी के बीजाणु पूरी फसल में हवा द्वारा एक माध्यमिक संक्रमण के रूप में फैल जाते हैं। आर्द्र हल्के मौसम और नमी, रोग के विकास के पक्षधर हैं। संक्रमण के लिए कवक को पत्ती के गीलेपन की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए रोग फैलने के लिए बारिश की आवश्यकता नहीं होती है। यदि सापेक्ष आर्द्रता 90 प्रतिशत तक बढ़ जाती है, तो संक्रमण की घटना बढ़ जाती है लेकिन यह तब नहीं होता है जब पत्ती की सतह गीली होती है (उदाहरण के लिए, बारिश की बौछार में); भारी बारिश वास्तव में पत्ती की सतह को धो सकती है और अस्थायी रूप से रोग की प्रगति धीमी कर सकती है।

पर्यावरण की स्थिति प्रतिकूल होने पर संक्रमण का विकास कम हो जाता है। इनमें शुष्क और गर्म मौसम की स्थिति शामिल है जिसके परिणामस्वरूप कम आपेक्षिक आर्द्रता और 25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान होते हैं। प्रयोगों से पता चला है कि 25 डिग्री सेल्सियस की 6–12 घंटे तक उपलब्धता, 4–6 दिनों के लिए रोग के विकास में देरी करती है और 30–50 प्रतिशत रोग की गम्भीरता को कम करती है, 24 घंटे से अधिक 25 डिग्री सेल्सियस तक प्रभावी रूप से रोग के विकास को रोक देता है। नतीजतन, बीमारी बसंत के महीनों के उच्च तापमान और कम सापेक्ष आर्द्रता में तेजी से गायब हो जाती है।

चूर्णिल आसिता रोग का प्रबंधन

1. फफूंदी रोधी किस्मों की बुआई

यह चूर्णिल आसिता को नियंत्रित करने का सबसे किफायती तरीका है। गेहूँ की किस्में इस रोग के लिए उनके प्रतिरोध में भिन्न होती हैं और कवक की नई नस्लें उस प्रतिरोधी किस्म से अलग–अलग प्रकार से प्रतिक्रिया करती हैं। इसलिए, चूर्णिल आसिता के प्रभावी प्रतिरोध के साथ फफूंदी रोधी किस्मों पर वर्तमान जानकारी प्राप्त करना महत्वपूर्ण है।

2. संतुलित उर्वरक उपयोग

चूर्णिल आसिता नाइट्रोजन की उच्च दर वाले क्षेत्रों में पनपती है। नाइट्रोजन न केवल कल्लों के गठन को बढ़ावा देता है, जिससे फसल की सघनता बढ़ जाती है। इससे फसल की रोग के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ जाती है। अतः उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।

3. गेहूँ के अवशेषों का प्रयोग

लगातार रोग की समस्या वाले क्षेत्रों में, गेहूँ के डंठल और अन्य अवशेषों को मिट्टी में मिला दें ताकि रोगजनक कवक गेहूँ की फसल बोने से पहले ही मर जाए। मिट्टी में गेहूँ के अवशेषों को शामिल करना, स्वयंसेवक गेहूँ और फसल चक्र को अपनाना क्षेत्र में ओवर विंटरिंग इनोकुलम की मात्रा को कम करता है।

4. कवकनाशी का प्रयोग

बहुत से कवकनाशी उपलब्ध हैं जो चूर्णिल आसिता रोग का उत्कृष्ट नियंत्रण प्रदान करते हैं। उनका अनुप्रयोग, लक्षणों के लिए खेतों को परखने और विकास के चरणों के माध्यम से कल्लों के बढ़ाव से रोग की गम्भीरता का आकलन करने पर आधारित है। दाने भरने के दौरान पौधे की शीर्ष दो पत्तियों को रोग मुक्त रखना आवश्यक है। क्षेत्र में रोग के स्तर, विविधता की ज्ञात संवेदनशीलता और अनाज के बाजार मूल्य के आधार पर कवकनाशी प्रयोग किया जा सकता है। गेहूँ में चूर्णिल आसिता के दमन के लिए दोनों, बीज और पर्ण कवकनाशी उपलब्ध है।

गेहूँ एवं जौ की अनुमोदित नवीनतम प्रजातियाँ

अरूण गुप्ता, ज्ञानेन्द्र सिंह, सत्यवीर सिंह, अनुज कुमार, मंगल सिंह,
सेन्धिल आर, रमेश चन्द एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना की 58वीं वार्षिक शोधकर्ता गोष्ठी दिनांक 24–26 अगस्त, 2019 के दौरान भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर, मध्य प्रदेश में सम्पन्न हुई तथा इसी दौरान इस परियोजना की प्रजाति चिन्हितकरण समिति द्वारा गेहूँ एवं जौ की निम्नलिखित कुल 19 प्रजातियों (17 प्रजातियाँ नई तथा साथ ही गेहूँ की 2 प्रजातियों का क्षेत्र विस्तार) को चिन्हित किया गया। चिन्हित प्रजातियों का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है।

प्रजाति का नाम	क्षेत्र / उत्पादन की दशा	उपज (कुंतल / हैक्टर) औसत उपज	उपज क्षमता	विकसित करने वाले संस्थान का नाम
गेहूँ की प्रजातियाँ				
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र : पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर सम्भाग को छोड़कर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुआ जिले व हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी।				
डी बी डब्ल्यू 187 (करण वंदना) (क्षेत्र विस्तार)	सिंचित, समय से बीजाई	61.28	96.60	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
डी बी डब्ल्यू 222 (करण नरेन्द्र)	सिंचित, समय से बीजाई	61.30	82.10	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
पी बी डब्ल्यू 771	सिंचित, देर से बीजाई	50.30	62.30	पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब
एच आई 1628	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	50.40	65.10	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर, मध्य प्रदेश
एन आई ए डब्ल्यू 3170	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	51.10	71.70	महात्मा फूले कृषि विद्यापीठ, कृषि अनुसंधान केन्द्र, निफाड, महाराष्ट्र
उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र : पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों को छोड़कर, असम एवं उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदानी भाग				
एच डी 3086 (क्षेत्र विस्तार)	सिंचित, समय से बीजाई	50.10	61.00	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
एच डी 3249	सिंचित, समय से बीजाई	48.75	65.70	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
डी बी डब्ल्यू 252 (करण श्रीया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	37.00	55.60	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
मध्य क्षेत्र : मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर सम्भाग तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र (झांसी एवं चित्रकूट सम्भाग)।				
यू ए एस 466 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	38.80	62.50	कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक
डी डी डब्ल्यू 47 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	37.30	74.10	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
प्रायद्वीपीय क्षेत्र : महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गोवा एवं तमिलनाडु के मैदानी भाग, तमिलनाडु के नीलगिरी एवं पलनी पर्वतीय क्षेत्र तथा केरल के वायनाड एवं इडुक्की जिले।				
एन आई ए डब्ल्यू 3170	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	36.80	44.30	महात्मा फूले कृषि विद्यापीठ, कृषि अनुसंधान केन्द्र, निफाड, नाशिक, महाराष्ट्र
जी डब्ल्यू 1346 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	28.50	40.40	आनन्द कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द, गुजरात
एम ए सी एस 4058 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	30.60	37.10	आघारकर अनुसंधान संस्थान, पुणे, महाराष्ट्र
एच आई 8805 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	30.40	35.40	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर, मध्य प्रदेश
एच आई 8802 (कठिया)	सीमित सिंचाई, समय से बीजाई	29.10	36.00	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर, मध्य प्रदेश
उत्तर पश्चिमी एवं उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र				
एच डी 3271	सिंचित, बहुत देर से बीजाई	36.6 (उ.प.मै.क्षे.)* 28.1 (उ.पू.मै.क्षे.)**	45.5 37.2	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
एच आई 1621	सिंचित, बहुत देर से बीजाई	37.0 (उ.प.मै.क्षे.)* 28.3 (उ.पू.मै.क्षे.)**	46.1 40.7	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर, मध्य प्रदेश
जौ की प्रजातियाँ				
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र : पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर सम्भाग को छोड़कर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुआ जिले व हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी				
डी डब्ल्यू आर बी 160 द्वि पंक्ति माल्ट जौ	सिंचित, समय से बीजाई	53.72	74.07	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
पी एल 891	सिंचित, समय से बीजाई	36.60	50.00	पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब

*उ.प.मै.क्षे.=उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, **उ.पू.मै.क्षे.=उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र

भारत में कृषि–स्टार्टअप की मौजूदा स्थिति

[1]श्रीजा सिन्हा एवं [2]सुधानन्द प्रसाद लाल

[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

[2]डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

भारत मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है जिसमें 58 प्रतिशत आबादी कृषि से आजीविका प्राप्त करती है। कृषि और सम्बंधित सेक्टरों से भारत का सकल मूल्य 2018–19 की पहली तिमाही में 5.3 प्रतिशत था। देश के कृषि क्षेत्र में 2017–18 में 2.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो कि 4 प्रतिशत की लक्षित दर से 1.9 प्रतिशत कम है। कृषि पर आश्रित लोगों के लिए यह एक आशा का क्षेत्र माना जाता है, लेकिन नवोन्मेष, बाजार सम्पर्क आदि की कमी के कारण किसान अनेक परेशानियों से गुजर रहे हैं। भारत में 15–29 वर्ष की आयु वर्ग के लगभग 30 प्रतिशत युवा बेरोजगार हैं। बात अगर सकल घरेलु उत्पाद की करें तो इसमें विगत वर्ष में गिरावट दर्ज हुई है। इस स्थिति में सरकार ने दो महत्वाकांक्षी परियोजनाएं शुरू की हैं, सन् 2020 तक किसानों की आय को दोगुना करना तथा सन् 2024 तक भारत की अर्थव्यवस्था को 5 ट्रिलियन डॉलर बनाना। इन दोनों महत्वाकांक्षी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए लोगों में उद्यमिता को बढ़ावा देना एक कारगर कदम होगा। विशेष रूप से कृषि के क्षेत्र में पिछले एक दशक में कृषि क्षेत्र की ओर शिक्षित युवाओं ने रुख किया है, जो इस क्षेत्र को नया आयाम प्रदान करने के लिए अग्रसर हैं। भारत सरकार कृषि उत्पादों के उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण और विपणन के क्षेत्र में नवीनतम तकनीकों के माध्यम से कृषि स्टार्टअप (एग्री–स्टार्टअप) को बढ़ावा दे रही है। स्किल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, मुद्रा, एसी और एबीसी एग्री–उड़ान जैसे कार्यक्रमों के साथ सरकार उद्यमियों को नए उद्यम शुरू करने में मदद कर रही है। एग्री स्टार्टअप, एग्री वैल्यू चेन में मिसिंग लिंक को पूरा कर रहे हैं, एक तरफ किसानों, और दूसरी तरफ उपभोक्ताओं को कुशल उत्पाद, तकनीक और सेवाएं दे रहे हैं। जून, 2019 तक एग्री–स्टार्टअप को लगभग 248 मिलियन अमरिकी डालर का वित्त पोषण प्राप्त हुआ, जोकि वर्ष 2018 से 300 प्रतिशत ज्यादा है। एग्री–स्टार्टअप साल दर साल 25 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। स्टार्ट इंडिया पोर्टल के आंकड़ों के अनुसार, भारत में 3392 कृषि स्टार्टअप है, जिनमें एग्रीटेक स्टार्टअप 1727, जैविक कृषि से सम्बंधित स्टार्टअप 918 जबकि डेयरी फार्मिंग से सम्बंधित स्टार्टअप 406 हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में एग्री–स्टार्टअप की स्थिति को दर्शाने वाली मैट्रिक्स

निम्न खंड देश में कृषि–स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिति को प्रकाश में लाने के लिए है। इसमें भारत में मौजूद कुल कृषि

तालिका 1: विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में कृषि–स्टार्टअप की संख्या

क्रम संख्या	राज्य	कृषि–स्टार्टअप की संख्या	क्रम संख्या	राज्य	कृषि–स्टार्टअप की संख्या
1	महाराष्ट्र	583	16	पंजाब	51
2	दिल्ली	290	17	छत्तीसगढ	74
3	कर्नाटक	382	18	झारखण्ड	28
4	उत्तर प्रदेश	269	19	उत्तराखंड	49
5	गुजरात	178	20	असम	43
6	तमिलनाडु	197	21	चंडीगढ़	9
7	तेलंगाना	187	22	जम्मू और कश्मीर	12
8	हरियाणा	99	23	गोवा	7
9	मध्य प्रदेश	130	24	हिमाचल प्रदेश	14
10	पश्चिम–बंगाल	103	25	मणिपुर	7
11	केरल	80	26	अंडमान व निकोबार द्वीप समूह	2
12	राजस्थान	105	27	त्रिपुरा	4
13	आंध्र–प्रदेश	86	28	पुडुचेरी	2
14	बिहार	71	29	नागालैंड	2
15	ओडिशा	49	30	मेघालय	4

स्रोतः स्टार्टअप इंडिया पोर्टल

व्यवसायियों, निवेशकों, इनक्यूबेटरों की संख्या पर राज्यवार आंकड़े शामिल हैं।

तालिका 2: भारत में कृषि–स्टार्टअप इकोसिस्टम का विवरण

क्रमांक	प्लेयर्स	संख्या
1	इन्वेस्टर्स	22
2	मेंटर्स	81
3	ऑक्सेलेटर्स	27
4	इन्क्यूबेटर्स	136

स्रोतः स्टार्टअप इंडिया पोर्टल

देश के कृषि–स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य खिलाड़ियों के बारे में बात करते हुए, स्टेटस का आंकलन निम्नलिखित आंकड़ों के विश्लेषण से किया जा सकता है।

भारत में एग्री–स्टार्टअप सेक्टर में काम करने वाले महत्वपूर्ण एक्सीलरेटर्स और इनक्यूबेटर्स

एक्सेलरेटर और इनक्यूबेटर्स स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र में प्रमुख हैं, वे स्टार्टअप की स्थापना तथा विकास में सहायक हैं। इनमें हमारे किसान भाई उद्योग को चलाने की कला सीख पाते हैं। वैसे तो आईसीएआर के संस्थानों और कृषि विश्वविद्यालयों में कई वर्षों से किसानों को प्रशिक्षण के माध्यम से उद्यमी कौशलता प्रदान करके उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास लगातार किया जाता रहा है। परन्तु, सरकार द्वारा वर्ष 2016 में शुरू किए गए प्रोग्राम ''स्टार्टअप इंडिया'' के बाद इस दिशा में और अधिक काम किया जा रहा है। आज लगभग सभी कृषि विश्वविद्यालयों में सरकार की मदद से एक्सीलरेटर और इनक्यूबेटर खोला गया है। बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर ने SABAGRI नामक इनक्यूबेटर लॉन्च किया; नार्म हैदराबाद ने a-idea, आईएआरआई, नई दिल्ली ने पूसा कृषि इनक्यूबेटर; इसी तरह चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने भी पिछले साल मई में नाबार्ड से 12 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता के साथ एग्री बिजनेस इनक्यूबेटर सेंटर लॉन्च किया है।

कृषि क्षेत्र में उभरते व्यापार के अवसर

कृषि क्षेत्र में स्टार्टअप दस से अधिक विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जैसे वित्त, इनपुट संवितरण, आपूर्ति श्रृंखला, कृषि डाटा और विश्लेषण, कृषि सलाहकार, कृषि मशीनीकरण, भंडारण सुविधा, आदि। कृषि के क्षेत्र में स्टार्टअप के लिए पाँच सबसे प्रमुख क्षेत्र हैं: मार्किट लिंकेज, डिजिटल एग्रीकल्चर, फार्म इनपुट, फार्म एडवाइजरी और फाइनेंसिंग। इनके अलावा बी2बी जिसे हम बिजनेस टू बिजनेस एग्री–स्टार्टअप कहते हैं भी काफी लाभदायक है। नैसकॉम (NASSCOM) की रिपोर्ट के अनुसार, एग्री–स्टार्टअप सेक्टर में कुल कारोबार का 54 प्रतिशत बी2बी द्वारा किया जाता है, पिछले 18 महीनों में बी2बी आधारित स्टार्टअप में निवेश 200 मिलियन अमेरिकी डॉलर हैं। बी2बी स्टार्टअप में किसानों के कुल उपभोक्ता समावेश की बात करें तो यह 25 प्रतिशत है। इसी प्रकार, सरकार के 21 प्रतिशत प्रस्तावों का बी2बी एग्री–स्टार्टअप द्वारा लाभ उठाया जाता है।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि यह बदलाव जो किसानों को उद्यमी बनने के लिए बढ़ावा दे रहा है, न केवल किसानों की आय को दोगुना करने में सहायक होगा, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था को भी मजबूती देगा। साथ ही यह कुल लाभांश में किसानों की हिस्सेदारी को बढ़ाएगा।

लेखकों के लिए दिशा–निर्देश

गेहूँ एवं जौ संदेश में छपने हेतु लोकप्रिय लेख साफ–साफ हस्तलिखित या डबल स्पेसिंग में टाईप किए हुए (तालिका, आकृति, फोटोग्राफ सहित) दो पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिएं। लेख में लेखकों का पूरा नाम, पता व ई–मेल अवश्य लिखें। लेखकों से निवेदन है कि वे अपने लोकप्रिय लेख 31 मई तक पहले अंक (जनवरी–जून) के लिए एवं 30 नवम्बर तक दूसरे अंक (जुलाई–दिसम्बर) के लिए भेजें।

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 26 नवम्बर, 2019 को 70वां संविधान दिवस मनाया गया।